अनवरत दुःख में

सुख के छींटे

काव्य संग्रह

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

नमिता दुबे

अनवरत दुःख में सुख के छींटे

अनवरत दुःख में सुख के छींटे

(काव्य संग्रह)

नमिता दुबे

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

978-93-5372-253-1
संपादक- प्रीति समकित सुराना
तकनीकी संपादक एवं आवरण चित्र- संदीप कुमार सोनी, वारासिवनी
मुख्य कार्यालय- 15 नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) 481331
मोबाईल- 9424765259. 9009465259
ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com
वेबसाईट- www.antrashabdshakti
प्रथम संस्करण- 2020, नमिता दुबे
मूल्य- 250.00 रूपये
मुद्रक- शैलू कम्प्युटर्स, वारासिवनी

THE BOOK WRITTEN BY NAMITA DUBEY

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

समर्पण

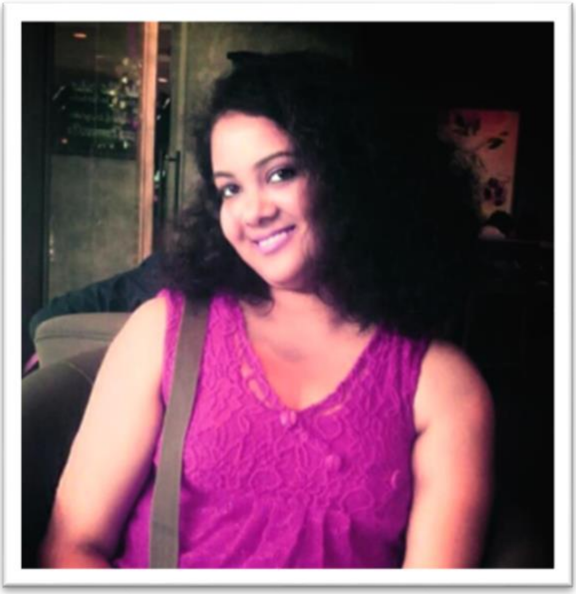

यह पुस्तक
मैं अपनी बिटिया

सोम्या

को समर्पित करती हूँ!

उसकी ही मेहनत का यह परिणाम है।
मुझे सदैव उसने प्रोत्साहित ही किया है।

अनुक्रमणिका

1.	स्वीकारोक्ति	13
2.	सागर की गहराइयाँ	14
3.	सूखा पेड़	15
4.	अनुभव	16
5.	'विध्वंस' या 'निर्माण'?	17
6.	ऐसे क्यों आये पापा?	18
7.	अनिर्वाच्य अनुभव	19
8.	अबला-सबला	20
9.	नवीन स्वप्न	22
10.	कलश	23
11.	अनुभूति	24
12.	कंठ	26
13.	बुद्धि	27
14.	जीवन के लक्षण	28
15.	एहसास	29
16.	अलग सी इक शाम	30
17.	सजा	31
18.	कर्म	33
19.	पीड़ा	34
20.	एक चयन ऐसा भी	35
21.	चिडिया	36
22.	कुछ अनजिये पल	38
23.	कैसे बचें?	39
24.	मेरे बच्चे	40

25.	बंधन	42
26.	पुनरागमन	43
27.	धरा के रूप	44
28.	अनवरत दुःख में सुख के छींटे	45
29.	कर्मफल	46
30.	निर्णय	47
31.	शब्दों की बाढ़	48
32.	भ्रम	49
33.	रिश्ते	50
34.	ये भीड़ है	52
35.	वो तेरा दूर जाना	53
36.	डर का सत्य	54
37.	राम को किसने समझा?	55
38.	देश के हुनरमंद बच्चे	56
39.	नया संसार बसा लें	57
40.	बोझ मत रखो	58
41.	एक अनुभूति	59
42.	अंतर का दरिया	60
43.	वक्त	61
44.	प्रकृति के नियम	62
45.	बालपन की पत्री	63
46.	एक अनुरोध	65
47.	अनुगूँज	66
48.	पर्यावरण में सुधार	67
49.	सापों की बस्तियां	68
50.	मेंहन्दी	69
51.	हँसी	70

52.	वेदना अंतर्मन की	71
53.	क्या बताऊँ?	72
54.	अरूणाई की बेला	73
55.	किसान	74
56.	'वो'-जो रह जाता है	75
57.	मानव समाज	76
58.	तड़प	77
59.	अप्रत्याशित आश्रय	78
60.	एक-दूजे को ढूंढेगे	79
61.	कैसे प्रीत निभाए हम?	80
62.	गांव और शहर	81
63.	अतीत के खत	82
64.	आधुनिक समाज	83
65.	आंखें	84
66.	शब्दार्थ	85
67.	आकांक्षा का बुलबुला	86
68.	हम पर्यटक	87
69.	राम नाम की महिमा	89
70.	थामा हुआ वक्त	90
71.	आज का रचनाकार	91
72.	ठंड़ सुहानी	93
73.	धुधंलाता दिन	94
74.	मेरी मुझसे मुलाकात	95

भूमिका

कवयित्री नमिता दुबे जी से मेरा परिचय आमने-सामने कभी नहीं हुआ है। उनसे कई बार वार्ता हुई अवश्य है। वह हमारी संस्था मंजिल ग्रुप साहित्यिक मंच (मगसम) से भी जुड़ी हुई हैं। यदा-कदा वे हमें अपनी रचनाएं भी भेजती रहीं हैं। उन्होंने मुझ से आग्रह किया कि मैं उनके इस काव्य संकलन का आमुख लिखूं। पहले तो मैं संकोच में पड़ गया लेकिन उनके पुनः आग्रह करने पर मैंने अपनी अभिव्यक्तिश: को प्रकट किया कि मैं साहित्य जगत में जो कुछ दिखता है, उस पर अपनी बेबाक प्रतिक्रिया देता हूं। अगर आप को यह मंजूर है तो मैं आपकी इस पुस्तक का आमुख लिखने को तैयार हूं। उन्होंने इसके लिए अपनी सहमति दी। तब जाकर मैंने नमिता जी के लिए आमुख लिखने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

इसी क्षणों के वार्तालाप को उनकी काव्य रचना *अनवरत दुख में सुख के छीटें* पर मैंने आमुख लिखने का मन बनाया। एक सप्ताह तक उनकी लिखी हुई समस्त रचनाओं को पढ़ा। मेरा मानना है जब तक कवि का मर्म स्थल पीड़ित, दु:खी, व्यथित नहीं होगा, वह अपने मन में प्रगट होने वाले आवेगपूर्ण मनोवेगों को शब्दों के माध्यम से कागज पर कभी उकेर ही नहीं पाएगा। रचनाकार की रचनाओं में समाज और देश के परिवेश, धर्म और आध्यात्म का रंग कई रचनाओं में दिखता है। जो परम सत्य को दर्शाता है। अपने काव्य कर्म के संबंध में भी कवियित्री अपने शब्दों के माध्यम से सतर्क, सजग और सावधान नजर आती है।

कहते हैं कि मन के उदगार को शब्द बनाकर कागज पर उतार देना ही तो लेखन कला है, और यह कला उसे ही आ सकता है जिसे मां सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त होता है। पुस्तक की दूसरी रचना *सागर चांद और मनुष्य* को लेकर रचनाकार की रचना सागर की गहराइयां में प्रश्न व उत्तर दोनों ही समाहित हैं। बुजुर्गों के दयनीय स्थिति को बताते हुए रचना *सूखा पेड़,* दर्द

और पीड़ा की दास्तान है। *पर्यावरण* पर चिंता को लेकर लिखी गई रचना आने वाले संकट को भी प्रदर्शित करती है। एक सैनिक के वीरगति होने के बाद जब उसके शव को उसके परिवार वालों को सुपुर्द किया जाता है तो परिवार के एक अबोध बालक के मन में किस तरह के प्रश्न आते हैं, कदाचित उसी प्रश्न को टटोलती रचना *ऐसा क्यों आए पापा?* ऐसा सवाल जिसका जवाब किसी के पास न होगा।

लेखिका के कलम की धार शिल्प की कसौटी परीक्षण होती नजर आती है। जीवन के खट्टे-मीठे कटौती के अनुभव को हम इन कविताओं के माध्यम से समझ सकते हैं। कविताओं की शैली लाजवाब है। अतुकांत रचना की वजह से कविताओं की भावनाओं को अनुभूतियों को सही स्थान प्राप्त हुए हैं। भूमि से मस्तक तक कि यात्रा जिस तरह से *कलश* ने कि उसका जैसे सजीव चित्रण रचनाकार ने अपनी रचना में कर डाला है। बुद्धि को चेतावनी देती रचना *बुद्धि* में कुछ खास बन पड़ी तो वहीं *जीवन के लक्षण* रचना में कुछ खास नजर नहीं आया।

कवियित्री की अधिकांश रचनाएं माननीय जीवन के अनूठी पौध से जुड़ी हुई हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ने के बाद लगता है कि अगर जीवन में रस नहीं होगा, जीवन नीरस कहलाएगा और नीरस जीवन में किसी भी तरह की कोई मिठास किसी को प्राप्त नहीं होगी। जीवन में सुख का आनंद भी वह आनंद होता है जिसमें दुख का भी सम्मिश्रण शामिल होता है। वर्तमान में जीने की कला को बताने का प्रयास कवियित्री ने अपने कई कविताओं के माध्यम से किया है। जिंदगी के प्रति एक आस्था मन में प्रकट होती हैं, आधे से ज्यादा रचनाएं कवियित्री की परिवार-समाज को एक नई दिशा प्रदान करने वाली है।

चिड़िया नामक रचना मुझे इस पुस्तक की श्रेष्ठ रचना लगी। वर्ष 2014 में मैंने एक गीत लिखा था। जिसका शीर्षक चिड़िया ही था हालांकि वह रचना भ्रूण हत्या से संबंधित थी।लेकिन इसी शीर्षक होने कि वजह से मेरी निगाह कवियित्री के इस रचना पे पड़ी। निर्भया कांड के परिदृश्य में एक श्रेष्ठ रचना चिड़िया अंतर्मन की पीड़ा को दर्शाती नजर आईं। कोरोना बीमारी की आड़ में एक रचना *कैसे बचें,* बच्चों की मन की समझ को

बतलाती हुई रचना *मेरे बच्चे* बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। धरा के रूप में बच्चों के जन्म को सिलसिलेवार *अनवरत दुख के सुख के छींटे* में बताया गया।

केवल कुछ सुंदर अलंकार, युक्त मुक्तक, प्रधान शब्दों का प्रयोग करने मात्र से ही कविता का संयोजन नहीं होता। वे सभी रचनाएं मंचासीन हो मंच से तालियां बटोरने में कारगर सिद्ध हो सकती हैं। लेकिन लंबे समय तक वे कविताएं लोगों के दिलों-दिमाग पर नहीं रहते। जनमानस के मनोभाव को परखने के लिए यथार्थ लिखना पड़ता है। कवि जब संवेदना से भरे शब्द समाज को देता है तो वे शब्द उनका पथ प्रदर्शन भी करते हैं और समाज के लिए प्रेरणा भी देते हैं। इस तरह से कवियत्री की कुछ रचनाएं बहुत ही सारगर्भित ढंग से मानव के प्रत्येक मन को प्रभावित करते हैं। कवियित्री की कलम का कमाल है कि उनके द्वारा केवल आसपास के दृश्य को रेखांकित करते हुए ही उन्होंने कलम ही नहीं चलाई है।अपितु उन्होंने मानव मन को जिस तरह से पढ़ने का प्रयास किया है। उसी तरह से उनकी कविताओं का जन्म हुआ है। पढ़ते समय मन भाव विभोर हो जाए रिश्तो में आई खटास को दूर करने का प्रयास करती कुछ पंक्तियां नजर आए तो इससे बढ़कर पाठक को और क्या चाहिए।

रचना *शब्दों की बाढ़* की कुछ पंक्तियां बहुत कुछ कह जाती हैं। *बाढ़ नहीं, रिश्ते के मध्य, एक मध्य धार बहने दे।* भ्रम रचना में *वह था सच या यह है सत्य या जीवन में भ्रम ही तथ्य... वक्त* रचना में अध्यात्म पर चर्चा की गई। युवा-जवानी-बुढ़ापा को *प्रकृति के नियम* के साथ जोड़कर बतलाया गया। *पत्री* का मजमून बालपन में किस तरह का लेखन होता है, उसका एक नमूना रखा गया। बालपन की मिला पीड़ा को कैसे समझें इसका एक अनुरोध रचना में मिला। *सफेद वस्त्रों में काला दिल लेकर चलने वालों में...* पर्यावरण में सुधार कैसे आए इस को रेखांकित करती रचना। सांप और मनुष्य दोनों की बस्तियां दोनों की तुलना करते हुए एक लाजवाब रचना लगी *सांप की बस्तियां।* इस रचना के माध्यम से कवियित्री ने यह बतलाने का प्रयास किया कि किस तरह आज के समय में मनुष्य सांपों की तरह बर्ताव करने लगा है।

कर्म में जीवन के अनगीनित पलों को अपने साथ में लेते हुए कवियत्री नमीता दुबे ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसके अंदर शांति

हो समृद्धि हो। उद्दाप्त जीवन मूल्य और संस्कृति का क्षरण ना हो उनकी यह सभी कविताएं दीपक की लौ की तरह समाज के लिए काम करती रहे। उनकी कविताएं जीवन की, देश की और सांस्कृतिक विरासत से संपन्न है। मानवतावाद की पृष्ठभूमि पर लिखी गई समस्त रचनाएं, आत्मबोध और जीवन जगत के अनेक प्रश्नों का बोध कराती हैं। इस पुस्तक कि भाषा सहज और संवेग है, शिल्प सुघटित, वाकस्फोट से रहित, सुनिश्चित और यथावश्यक व्यंजना से युक्त शब्दों के सरलतम बर्ताव से समस्त कविताएं सुष्ठु बनी हैं।

आज का युवा वर्ग जिस तरह से जरा सी जीवन के हलचल को नहीं संभाल पाता है और अपनी जिंदगी को समाप्त कर रहा है, उस को रेखांकित करती हुई रचना *निष्फल प्रायश्चित।* कोरोना के बाद पूरे विश्व में उपजी एक बेहद कारुणिक सामाजिक समस्या जिसने इस देश को झकझोर कर रख दिया। मजदूरों की व्यथा को बहुत ही उम्दा शब्दों में, उम्दा भाव के साथ रचनाकार ने रखा है। रचना *बेबसी* ने भी कम प्रभावी नहीं किया है। कुछ रचनाओं में अतिरिक्त चमक भी विद्यमान है तो कुछ रचनाओं में विचारों का झरना प्रभावित होता है। निश्चित रूप से समकालीन कविता क्षेत्र में यह पुस्तक अपना एक विशेष स्थान रखेंगी।

सुधीर सिंह "सुधाकर"

राष्ट्रीय संयोजक

मंजिल ग्रुप साहित्यिक मंच

(मगसम) दिल्ली

मो - ७७०३८०२१२१

ईमेल - sudhirsinghmgwa@gmail.com

प्रस्तावना

जीवन में अनिवार्य हो जाता है की आंतरिक भावावेश को व्यक्त करने का कोई साधन हो। सौभाग्य से, मेरी प्यारी माँ के साहित्यिक रुझान के कारण, घर में सदा ही कविता-कहनियों का पढ़ना-लिखना होता रहा है। कविता मन में घुमड़ते भावों को प्रकट करने का एक बहुत ही सुन्दर साधन है। कविता एक प्रक्रिया है जिसमे, एक व्यक्ति के हृदय के भाव, किन्ही अन्य के हृदयों के मनोभावों को छू लेते हैं। जीवन में घटित नाना प्रकार की घटनाएं, मन के किसी कोने में, कविता का रूप लें लेती हैं; जिन्हें वक्त का उपचारात्मक स्पर्श एक ऐसे मे रूप में गढ़ देता है, जिसे की दूसरे समझ सकें। एक कवि को उसकी हर एक कविता, वक्त के उस क्षण में स्थानांतरित कर देती है, जिसमें ऐसा कुछ घटा था, जिसका परिणाम वो कविता हुई; हर एक कविता द्वार होती है उस मनस्थिति को पुनः जीने का। एक कवि की प्रतिभा का यही प्रमाण है, की वो अपने पाठकों को भी, अपने शब्दों द्वारा अपने मन के द्वार की चौखट तक खींच लाये।

अनवरत दुःख में सुख के छींटे, एक ऐसी कृति है जो अपने पाठक को कई विभिन्न मनस्थितयों की यात्रा कराएगी। जीवन में स्थायी कुछ भी नहीं होता है और अस्थिरता में ही संभवतः जीवन का वास्तविक आनंद निहित है। यदि जिंदगी सपाट होती तो शायद इतनी सुन्दर न होती। जिस प्रकार किसी भी व्यंजन के स्वादिष्ट होने के लिए महत्वपूर्ण है की उसमें पड़ने वाले मसालों का सावधानीपूर्वक मिश्रण हुआ हो, उसी प्रकार जीवन को जिवंत ढंग से जीने के लिए आवश्यक है की हमें सभी भावों का अनुभव हो। यह पुस्तक उस पड़ाव पर पहुंचने का जश्न मानती है, जहाँ हमें

जीवन में अनंत दुःख को स्वीकारने तथा क्षणिक सुखों में आन्दन्दित होने की मनस्थित की प्राप्ति हो जाती है। इस संग्रह में जीवन के हर रंग को छूती हुई कविता सम्मलित है: दर्शन, अध्यात्म, प्रेम, समाज, सत्य, मिलन-बिछोह, आनंद-विषाद, आक्रोश-आशा, कल्पना-यथार्थ। जीवन के बहुत ही कम ऐसे पहलु होंगे जिन पर की इस पुस्तक ने प्रकाश नहीं डाला है। यह एक सुन्दर समामेलन है विभिन्न मनस्थितयों का। आशा है पाठकों को मन के द्वार तक लाने का कवि का प्रयास सफल रहेगा और सभी जन, कम से कम, किसी एक कविता का अपने हृदय से अनुभव करेंगे।

सोम्या दुबे

स्वीकारोक्ति

विगत का लेखा-जोखा कैसा? बीता वो, तो बीत गया,
पन्ना जीवन की किताब का, पलट गया तो पलट गया।

कहानी को तो बढना है, मन का बंद द्‌वार खोल दिया,
बाकी रहा एक कोना क्यूं, जब, सब कुछ ही तो बोल दिया?

मन पर पड़ी माटी की पर्तें, जब हटी तूफानों में,
जाग गए कुछ सोते बीज, आसमान के सोपानों में।

पूछा उनसे, 'तुम क्यूं ना खुले?', तडप कर बोले, 'भीतर थे दबे,
कौन आता मुझ तक प्रिये?, ऊपर-ऊपर ही सब चले'।

यूँ तो समंदर खंगाले जाते हैं, भीतर की गहराई नापे कौन?
स्वपन देखने की आदी आँखें, मन का आँगन नापे कौन?

रीते-रीते आँसुओं से, स्वप्न हमें छलते रहे;
छुपी अनन्त गहराई में, दिल का सागर भरते रहे।

सामने अनजानी मंजिल, पड़ाव सारे पार किये,
कुछ हमारे, कुछ अनजाने, स्वप्न हमने साकार किये।

जो रह गए, वो रह गए, स्वीकारोक्ति का चरम था,
जान लिया अब मैंने, हुआ संपूर्ण यह जन्म था।

सागर की गहराइयाँ

आँखो से दिखता सागर-विशाल, रहस्यमयी;
पर बहते सागर के, भीतर का कोई माप नहीं मिलता।
दो बूंद गिर जाये आँख से, तो मन हल्का हो जाता है,
पर सब समेट, गरल पीना भी सिर्फ सागर को ही आता है।
कितनी झीलें, तालाब, नदिया; सागर में मिल जाते है,
सब को समेट बांहों में, सागर मौज में बहता है।

मन सागर का जब भरता है, ज्वार आ जाता है,
तन्हा चन्दा सुनता है, जब सागर चन्दा को बुलाता है।
चाँद उससे मिलने को तत्पर, दौडा चला आता है,
पर सागर कितना भी उठे, चन्दा को छू नहीं पाता है।
अंत में मन को मसोस वापस शान्त हो जाता है,
उस शांत सुबह में चंदा, सागर में डूब जाता है।

सागर की हिम्मत तो देखो, लाखों जीवों का पनाहगार,
मानव दिन-रात जहाजों से, उसकी छाती रौंदता जाता है।
उस पर भी स्नेहशील सागर अपना खज़ाना लुटाता है,
मुर्ख मानव किन्तु उसकी सहृदयता समझ नहीं पाता है।
धैर्य-संयम जब डिगता उसका, सागर मृत्यु बन जाता है,
विकराल रूप देख सागर का, मानव बस भाग ही पाता है!

सूखा पेड़

बाप-दादाओं से,
थी अर्जित सम्पत्ति
घर क्या? महल था!

बच्चे बड़े हुए सब,
शहरों में हुई बडी पढाई
फिर चले गये वे विदेश।

वापस कोई ना आया!
बस, बाप से रूपया मंगाया
बेटों की परेशानी समझा
चार हिस्सों में महल बँटा!

पर इतने से भी,
मन ना भरा 'उनका'
माँ-बाप के लिये दो कमरे,
रसोई, बाथरूम छोड़
सारी सम्पत्ति बेच दी।

उन बुजुर्ग दम्पति का
उनकें पुत्रों नें,
आशियाना हर लिया।
हारी-बीमारी, दवा खर्च
भी न था उनके पास।

बेटे तो आये नहीं कभी
रह गये गये पति-पत्नी दोनों
सूखे पेड़ समान।

अनुभव

शिक्षा जो ना सिखा सकी
वों अनुभव सिखा गया!
हर चोट पर नया,
इक संसार बसा गया।

वो कल भी नया था
वो आज भी नया है,
जीवन का पथ कब,
कहाँ पुराना हुआ है?

हर राह कांटें-फूलों के
बगीचे से गुजरती है,
कभी खुश्बू मिले, तो
कभी चुभन मिलती है।

चलायमान है जीवन
मिलते अनेक अनुभव
कुछ सर्द-बर्फीले होते,
कुछ जलती आग से बेदर्द!

जीवन अनुभवों की है पोथी
संसार से मिले छल के मोती,
करें साझां अनुभवों को हम
देखें कब तक किस्मत सोती!

'विध्वंस' या 'निर्माण'?

कितने सावन बीत गये, मैं ढंग से सोया नहीं,
मंजर वो कत्लेआम का, आँखो से मिटा नहीं!

जंगल के जंगल काट डाले थे, नया शहर बसाने को,
चीख रहीं थी कोपलें मासूम, जीवन अपना बचाने को!

धाराशाही हुये वृक्ष, हुआ चहुँ ओर विनाश,
मानव बना उनके लिए, मृत्यु का बाहुपाश!

मानवता को धता बता, आधुनिक 'निर्माण' में लिप्त,
बढने लगे हमारे कदम, विध्वंस में था मन सिप्त!

गर्मी गई बढ, पानी गया सूख, पर हमनें लिया है मन में बिठा,
प्रकृति को मिटा कर हम, रहेगे अस्तित्व अपना मिटा!

जो जीवन दायिनी शक्ति, उमंगों से भरती थी,
अब उजड़ी माटी वहां, प्रश्न हमसे करती है!

अवहेलना पर्यावरण की, हमे मिटा कर रख देगी,
कुपित जब प्रकृति होगी, ठौर ना कहीं मिल सकेगी!

ऐसे क्यों आये पापा?

‘पापा कब आयेंगे?’
पूछा नन्हे बालक ने मां से,
हँस कर बोली, ‘राखी पर।’
खुश बहुत थी वो,
पति की आगवानी को ले कर!

जाने कितने पकवान बनाये
किया सोलह श्रंगार,
बैठी थी इन्तजार में साजन के
की आकर रूकी गाड़िया चार।

दी गई तोप-रायफल की सलामी
शहादत के गीत बजने लगे।
सहमा खडा़ बालक बेचारा
बस सबसे यही पूछे,
ऐसे क्यों आये पापा?
चल कर, क्यों ना आये पापा?

अनिर्वाच्य अनुभव

राहें तकी मैंनें हरदम
हाथ पकड़ कर चलें हम,
पर कुछ कदमों का फासला
ताउम्र न पाट सके हम!

अपनी-अपनी सोच में ढ़ले
हम साथ तो चलते रहे,
पर! विचारों के भिन्न सागर
दरम्यां हमारे बहते रहे।

मुड़ कर देखनें की आदत,
ना थी कभी तुम्हें।।।
और न ही मैंने कभी तुम्हारा
अनुसरण ही किया...
'समान्तर जीवन' था पथ हमारा!

अब, जबकि शायद
आखिरी मोड़ है जीवन का।।।
देखो हम में से पहले, कौन जाता है?
जो दूजे से अनिर्वाच्य
अनुभव साझां करेगा।

अबला-सबला

ममता को दिल में बसाया है
छाती से अमृत पान कराया है,
तब तुमने शिशु रूप से,
ये उन्नत यौवन पाया है।

आज नारी को अबला मानते,
गुण ना पौरूष के पहचानते!
सम्मान देने के स्थान पर
भोगी बन बस ललचाते।

हे आधी दुनियां के अधिकारी!
मैं 'औरत!'
अपना स्थान, अपना अधिकार
अपना सम्मान, अपना अस्तित्व
बस यही तो चाहती हूँ।

मैं समझ नहीं पाती हूँ, तुम्हें क्यों ऐसा लगता है
मुझे सम्मान दे देने से, तुम्हारा मान कम होगा?
दमन-शोषण, बलपूर्वक निर्णय थोप,
अधिकारों का कर हनन, हिंसा-बलात्कार कर
क्या तुम जीत जाओगे???

अबला-सबला सब छोडो!
क्या साथ नहीं चल सकते हम?
ना मुझे गिराओ, ना खुद गिरो,
ना मेरा शोषण करो, ना खुद को शोषित समझो,
क्यों न, एक-दूजे की नींव बने हम!

आहत ना तुम्हारा पौरूष होगा,
स्वाभिमान मेरा भी गर्वित होगा,
पूरक बन हम जिये,
बन प्रतियोगी क्या प्राप्त होगा?

स्त्री कर्मठता और आत्मबल से
कितने संकट तार देती है,
बस मान-सम्मान, प्यार, मीठे बोल
इनपे जीवन वार देती है।

तनिक समझो! करो प्रयास!
बहती नदियों सी सिमट आयेगी,
समंदर को भर बाँहों में,
जीवनरस लुटायेगी।

पर यदि तुम बंध कसोगे!
बाढ़-वृष्टि तुम्हें ढ़सेगी!!
अब भी वक्त है, संभल जाओ
इस बार स्त्री नहीं, दुनिया धसेगी!

नवीन स्वप्न

सात फेरे लेते ही,
जीवन तुम्हारा सजन हुआ!
नयीं जिन्दगी, नये सपनें,
नयीं राह पर पदार्पण हुआ
राह नयीं, सोच नयीं
नवीन कठनाईयां आती गईं
पर जीवन साथी संग
हर राह आसान हुई...
फूल मिले, शूल भी मिले
कभी हारे, कभी टूटे
नित बन सम्बल एक
सजन की बांहों के हार मिले....
नये स्वप्न, नयी जमीन
नन्हें-नन्हें फूल खिले
जीवन बगियां महकने लगी
जीने को नये किरदार मिले।
खिलते स्वप्न साकार हुये
नये हमको आधार मिले,
जीवन तेरे आंगन में
हमें अनुभव अपार मिले।
चलो आगे चलते है
नये सपनें गढ़ते है,
फिर राहों की भूलभलैया में
खो कर, खुद को छलते है!।
नूतनता का सूरज, देखो
गर्मी कितनी देता है!
सर पर रख, सपनों की छत
नयीं छाया से परिचय करे।

कलश

अहोभाग्य मेरे!
ये अवसर मुझे मिला,
रौंदी जाती थी कभी पांव तले,
आज, सर पर सवार चलती हूँ!

धन्य हो तुम कुम्हार
जीवन मेरा बदल दिया,
रौंदा पीसा गूंथा तुमने
चाक पे धर आकार दिया।

कलश बना उसे पकाया
तब ये स्वरूप मैंने पाया,
पूजित हुई तुच्छ माटी मैं
जिससे बना शुभ कलश ये

पूजा में मेरा अहम किरदार
प्यास बुझाये मानव की;
शुभ कार्य का मैं प्रतीक
घर में लाती सुख समृद्धि।

अनुभूति

अपने अंदर झांक के देखा
एक अंजान परछाई को पाया,
विस्मित हृदय समझ ना पाया
ये मुझमें है कौन समाया!
अपरिचित सा इक साया,
जैसे मुझसे करता सवाल
यूं दहक रहा था मन मेरा, जैसे
जलती हो आसमान की काया।

अनुभूतियों के बवंडर बेताब
डुबो रहे सुधियों की आहट;
मैं अचानक मेरे ही सामने!
यूँ लगा, हूँ मैं दर्पण में साया।
पर सवाल झिंझोड़ गया
'तू जीता है?! सोच जरा!'
जीने की अनुभूति व्यर्थ!
पहले कब, खुद से था मैं टकराया?

बिखर गए खाव्बों के शीशे
मैं तो खुद में ही था अजनबी साया,
दुनियाँ क्षणभंगुर है! जानता हूँ,
पर खुद को ही कहां पहचानता हूँ?

बडा सशक्त प्रहार था
अपराध बोध का भार था,
जिया अब तक था ऐसे
सोता मृग मरीचिका में जैसे!

भीतर गूंजा, ‘गर जिन्दा हो तो,
जीवन की सूरत बतलाओ,
आँख मींच ना पथ अपनाओ!’
देता हूँ चुनौती स्वयं को!
सुनों! बलशाली है पौरुष मेरा,
ढोती हैं जीवन यह दो पतवारे
एक संस्कृति, दूसरी परम्परा,
क्या इससे अलग है अस्तित्व मेरा?

‘कर्म पथ और परोपकार!’,
जवाब दिया आत्मा ने बढ।
‘बंधी राह पर अनचाहा किरदार
रहा हो भले ही अब तक जीवन,
कुछ अलग भी कर सकते हो!
ये वक्त भी गुजर जायेगा
पर अब तुम चुन सकते हो,
हाँ, तुम सच में जी सकते’
हाँ, तुम सच में जी सकते

कंठ

मन चातक सा,
जाने किस तृष्णा को
धरे, कंठ भटक रहा।
सदियां बीती, ना मिली थाह।
प्यासा पंछी किधर रहा?
उम्मीद के पडाव होते रहे पार,
उडान रही जारी मगर,
सोचा, 'शायद अगला
पडाव होगा लक्ष्य....'
किन्तु! मन की भटकन को
ना मिली मंजिल की खबर।
बादल देख चिल्लाता है
प्यास से अकुलाता है,
मन के घोड़ों पर लगाम नहीं
दुनियां को भरमाता है!
माया के जाल में उलझा
केवल जुबा बजाता है।
कंठ हो कर आकुल जब
उंगली पकड राह दिखाता है,
ज्ञान की ज्योति लौ बन जाती
कंठ घूंट-घूंट सहलाता है।

बुद्धि

माटी का तन, चंचल मन, उस पर बुद्धि का प्रकोप,
क्या से क्या बन गया मानव?, लगा उसपे यह कैसा आरोप?

आसमान का सीना चीर, गहराईयों में घूमता है,
अविरल बहते शून्य में, नई पताकाये फहराता है।

ज्ञान का कोलाहल बढा, बुद्धि का समंदर गर्जा,
मानवता का करके त्याग, जानें किस गुमान में हर्षा!

इंसानियत का हो गया कत्ल, चरित्र खो गया, रिश्ते-नाते गये,
धर्मान्दता का ओढ चोला, इन्द्रिय सुख में रमते गये।

चक्षु खुले पर देख ना पाये, मति भ्रम सदा भटकाये,
दो बिंदुओं के बीच का सफर, ना समझे, हाहाकार मचाये!

सोच को बंद कर पिटारी में, हो मुर्ख, भेड चाल में जीता है,
जो है नहीं उसको सच मान, जहर जिन्दगानी का पीता है।

'बुद्धिकौशल' का दे कर प्रमाण, गलती पे गलती करता है,
अंकुश, कुछ भ्रमित लोगो का, मानवता का ह्वास करता है।

ऐसी बुद्धि किस काम की, जो सच को स्पष्ट कर ना पाये,
तिल-तिल कर जले मानव, पर रेखा पार कर ना पाये।

जीवन के लक्षण

सुदूर मन की सुधियों को
संजोय नीला आसमान;
इंद्रधनुष की तान पे
तीर बन भेदता वितान।

इक उम्र चुरा, मन जीता है
शून्य से लेता सांसें उधार,
रूह जीवन, अमृत पीता है
तन खोखला, मन रीता है।

दूर तक खिली घूप में
पांव तले छुपा साया,
कहीं गूंजती है आवाज,
कहीं उगता है सितारा।

जीने के है आसान, कुछ निशान
रोशनियों में छुपे अंधे अरमान
जख्मी पाँव चले कहाँ तक
काटें भरे है सब स्थान!

हाँ, चलो साथ चले
मुट्ठियों में थामे काल,
तीनों को साथ देखे
भूत, भविष्य, वर्तमान!

एहसास

बिखरे मनके थे समेटे
एहसासो के धागों में,
सुधियों की माला फेरी
सूने मन के भागों में।

जाने कहां से चली आई
यादों की चिर-परिचित धारा,
बन पतंग फिर उड़े किस्से
जिन्हें जमाने ने नित मारा।

यूँ लगा वक्त बीता कब था!
छुप के बस संग खडा था।
कहीं तू था, कहीं थी मैं,
अनंत सफर सामने पड़ा था।

अंदाज ना था किनारा कहां है,
तूफान, घेरे रूह को खडा था
बीच भंवर में डोल रही थी नैया
सुधियों का मोती, झड पडा था।

आगे का सफर, तुम संग बीता
ठिठका समय फिर चला;
महसूस होता फिर से नया
जीवन जो हर बार जिया।

अलग सी इक शाम

अलग सी इक शाम
धीरे-धीरे उतर आई;
मेरे मन के आंगन की
धूप कुछ कुम्हलाई।

शाम के झीने आंचल से,
रात की चाँदनी छिटकने लगी
और यूँ हुआ की अचानक तारे
महफिल सजा के बैठ गए।

जुदा अंदाज में मौसम भीगने लगा ,
चाँद मुझे बांहों में समेटे बैठ गया;
बादलों संग बहता अलसाया मन,
सुर ताल पर झूमता, ऐंठ गया।

गा रहा था मैं, की तभी
बारिश की बूँदें तेज हुई;
होश में आया जब मैं,
छत पर खुद को भीगते पाया!

सजा

क्यों दी सजा अपने आप को,
लिया किस्मत से कैसा बदला?
वो मिटाने पर थी तुली
तुमने उसे ही थाम लिया!

कभी सुरा कहा, कभी औषधि
कभी पी, कभी पिलाई गई।
जीवन की हर राह पर
बस, बोतल नचाई गई!

बिगडी ताल कुछ ऐसी
जीवन अलग रस्ते गया,
अस्पताल से गहरा इक
नाता तुम्हारा जुड गया।

हो गये परेशान घर वाले,
अंग सब तुम्हारे मरने लगे,
जहर फैला शरीर में
पंख परिंदे के फड़कने लगे।

छोड बर्बाद देह, तुम चले गये;
बदला लिया तुमने किस से?

माता-पिता? जिन्होंने तुम्हें समझा नहीं!
जीवन साथी? जो जबरन सौंप दिया गया?

अपनी बात कह ना सके,
इसमें दोष किसका? परिणाम!
मासूम बच्चे हुये अनाथ,
वो पत्नी जिसे तुमने कभी
अर्धांगनी माना नहीं,
विधवा बन जीती है आज।

तुम किस दंड के भागी थे?
सजा तुम्हें मिली ही कब?
अपने गुनाहों की तुमने,
दूसरों को दी सजा
खुद को, प्रियजनों को
बर्बाद कर, चले गए।

कर्म

अरे, रूक जिंदगी!
कर्म का फल तो चखने दे।
कहीं तीखा,
कहीं मीठा,
कहीं फीका,
कहीं उभरता है
बेमिसाल स्वाद!
घूंट-घूंट पीने तो दे।
माना बडी जल्दी है तुझे,
काम-काज से हलकान है तू;
तेरी फितरत दौडना है
पर मुझे तो जीना है!
खूबसूरत इस दुनिया का
सौन्दर्य पीना है;
कर्म का कोल्हू तो चलेगा
लिबास भी बदलेगा।
हर बार की भागदौड़
समय ना रखेगा!
गुजार कर क्यों?
जी कर जाये ना
जीवन-रस
पी कर जाये ना!

पीड़ा

क्या कष्ट है तुम्हें?
ये उदासी क्यों?
कैसी है पीडा?
सब कुछ तो है दिया:
ये लम्बा-चौड़ा घर,
सारी सुख-सुविधायें,
गाडी-ड्राइवर,
भारी बैंक-बैलेंस।
फिर क्यों हर वक्त,
चेहरा उदास रहता है?

भर आई आँखों को पोंछ;
मन ही मन बोली वो,
'सब दिया! बस खुद को दे ना सके!
बंधन प्रेम के समझ ना सके,
पीडा का कारण हो,
क्यों नादान बनते हो ?
जल रहा है दिल, जलने दो,
हवाओं को मत साधो।
रेल की पटरी बना जीवन,
कैद है मन, सोने के पिंजरे में।'

एक चयन ऐसा भी

एहसास तुम्हारे आने का जब हुआ
वो पल जिंदगी का सूरज बन गया;
जब तुम आये,जीवन सम्पूर्ण हो गया।
तुम केन्द्र थे हमारे जीवन का;
जीवन धुरी-सा घूमता बस,
तुम में ही सिमट कर रह गया।
तुम राग-रंग, लय, सुर-ताल थे
तत्काल वो स्वर्णिम समय गुजर गया,
हुई वेदना की दस्तक,
मन की जमीन बंजर हो गई।
संकेत था फासलो का,
बढ रही थी दूरियां,
स्नेह का स्रोत हमारी ओर लबालब था
पर तुम्हारा मन नेह से विरक्त हो गया।
उस का तुम्हारी जिंदगी में आना
और हमसे दूर जाना, एक साथ घट रहा था।
तुम जितना उसके नजदीक जा रहे थे,
उतना हमसे दूर जा रहे थे;
उतना ही अपने समाज-संस्कृति,
धर्म-कर्म से दूर जा रहे थे।
जब सामने वो दो-राह आया,
विधि का विधान, तुम्हे एक को था चुनना।
इकलौते बेटे थे तुम हमारे,
पर धर्म से भटक गए।
हमारी सांसें-धडकनें,
तुम्हारे लौट आने की आस पर हैं टिकी।

चिडिया

नन्हे-नन्हे पंख खोल
उस नन्ही चिडिया ने
हसरत भरी निगाहों से
आसमान को देखा भर था।
उडना चाहा,
ऊँचा और ऊँचा।
देख रहे थे गिद्ध, छुप कर
गोश्त पर थी उनकी निगाहें,
अंधेरे का फायदा उठा
अपने जैसों का पा कर साथ,
टूट पडे वो भेड़िये उस पर।

नोचा-खसोटा, चीर दी देह,
खून पी कर फेंका उसको
राजधानी की सडकों पर!
उन्होंने सोचा यह जंगल है,
और हमारी ही तरह
सब जगह गिद्ध छुपे बैठे हैं!
लेकिन,
उस रात के कुकृत्य के बाद
जंगल दहक उठा!
चिड़िया के समर्थन में

जुट गई भीड़ तमाम,
पकड़े गए गिद्‌ध
और उन्हें मिली
यथोचित सज़ा!
आजाद हो गई आत्मा
उस चिड़िया की,
गुनाहगारों को देख,
थी परेशान,
पर तृप्त हुई आज।
लौट अस्तित्व को जाती है,
दरिन्दों की रूहो को
सजा पाते देख
हर्षाति है।

कुछ अनजिये पल

जीवन की किताब
अभी अधूरी है;
कुछ पन्ने लिखने बाकी है।
वक्त की दरारों से
झांकते कुछ पल,
अपने अस्तित्व की
लड़ाई लड़ रहे हैं।
उन्हें शब्दों में आंका
और परखा नहीं गया।
वे लहू-लुहान से,
दिल के किसी कोने में दबे है।
आँख बंद करके जब-जब
मन की सीढियां उतरी,
वे मुस्कुराके, आलिंगन कर
दास्तान सुनाने लगे
और गढने लगे एक इतिहास।
तुम्हारे जीवन के हर एक पृष्ठ पर,
दर्ज हो गये सदियाँ बन कर;
वर्तमान की पृष्टभूमि पर!

कैसे बचें?

हालात खराब है!
बचना है जरूर,
पर बचेगे कैसे?
ना सुनी प्रकृति की बात
ना कर सके धर्म का पालन।
नया जमाना है, कह कर
गल्तियों को दोहराते रहे;
परम्परा और संस्कृति का
हर पल बनाया मजाक,
मात्र किताबों के ज्ञान पर
सदैव इठलाते रहे।
बस एक करवट प्रकृति की
डरा गई!
मौत की हुई शुरूआत।
आईना दिखा गई!
आज असाध्य व्याधि को देख सामने
घबराता मन है,
सुन मौत की आहट कांप जाते हैं प्राण,
कैसे बचे सोचते है,
अपना ले
गर पुरातन रीति रिवाज
परम्परा तो बचने की है एक आस।।

मेरे बच्चे

विगत कुछ वर्षो से
तुमसे दूर हूं मैं;
सच, कर्तव्य बोध में गुम
मजबूर हूं मैं।
छूटी थी जब मैं, अकेली, असहाय
मंझधार में बिन पतवार;
जीवन सागर बहुत हँसा था,
लहरों नें बहुत छला था!

टूटी-बिखरी, पर खडी रही
तूफानों से जूझी, लहरों से लडी,
पर जिंदगी के सामने अडी रही।
तुम बीज बन, मेरी देह में पलते रहे,
तुम्हें पाला, पर मैं तूफान में पडी रही।

पनाह ना अपनों के पास थी
ना आसरा गैरों ने ही दिया,
एकांत, चिर साथी बना,
घूंट-घूंट कर जिंदगी को पिया,
वक्त यूँही बीतता गया और
सोई चेतना लौटने लगी।

कर्तव्य की राह दोस्त बनी,
मैं सिमटी भी, मैं बढ़ी भी।
जड़े गहरी और गहरी धँसती गईं,
तुम शिशु रूप में, साथ थे मेरे,
मन की धरा क्लांत पर उर्वरा थी।

सफलता की सीढी जब मिली
बस चढती गई, चढती गई।
मैंनें, साहिल पर हो खडे, नहीं जिया
तूफानों से घिर राह बनाई है,
अब व्यस्तता में मंजिल पाई है।

वो नहीं है, पर उसका अंश हो तुम,
अब मेरी ही ये सारी रौशनाई है।
आज दुनियाँ में मुकाम बना कर,
सर पर छोटी छत सजा कर;
खुश हूँ अपनी जिंदगी में,
साथ तुम्हारा पा कर, मेरे बच्चे!

बंधन

हां, मुझे स्वीकार्य है
सारे बंधन;
प्रेम के..., विश्वास के..., उल्लास के...,
आचरण के..., आत्मीयता के..., भावनाओं के।

कैद में इनकी
जीवन आधार है, स्वयं भू प्रकाश है,
खुशी और प्रसन्नता का सुन्दर दयार है।

मैं बार-बार, हर जन्म
इस एहसास को जीना चाहती हूँ।
तुम्हारे साथ, तुम्हारे लिए
अनुभूति के इस अनन्त सागर में,
डूबना, उतरना, तैरना, लहरों संग बहना
सब स्वीकार्य है।

बस तुम यूं ही,
अपनी पलकें में मुझे कैद रखो।
जन्म-जन्मांतर तक,
समय की परिधि के पार जहां हम एक हैं।

पुनरागमन

चलो, एक बार फिर,
वहीं चलते है, जहां से
ये सफर शुरू किया था।
वही धरा, वही आसमान
जहाँ बांहों में तुमनें, मुझे
पहली बार भरा था।
वो काल्पनिक दुनियाँ में विचरना,
छोटी-छोटी ख्वाहिशों पे झूम पडना,
हथेली में बंद, खनकते स्वप्नों का
कठोर जमीं पर बेधड़क चलना।
माना, बहुत कठिन था सब कुछ
परन्तु संभव होता गया,
सामंजस्य और भावनाओं का
एक संसार निर्मित होता गया।
सच बडा़ अलौकिक, बड़ा विचित्र;
हम डूबते जाते है, समझ नहीं पाते है
लहरे डरातीं है, ख्वाहिशे आजमाती है,
राहों की माटी, शूल बन जाती है।
हम, संग-संग, दूर बहुत दूर चले आये,
पीछे पलट के देखा, तो परछाइयां लम्बी थी,
धुंध में लिपटे कुछ साये दिखे,
कभी बहुत अपने थे,
उनके ईर्द-गिर्द ही जिंदगी धूमती थी।
अब बेगाने हैं, पराये हैं,
पर तुम, तुम जन्मों सें मेरा अंश हो,
कल भी हम संग थे, आज भी साथ है।

धरा के रूप

आखिर वक्त के दरिया का मोती,
पिघल-पिघल बरसने लगा!
धरा तप्त हुई आकंठ,
जल, नदिया में बहने लगा।

बाढ की स्थति देख फिर
श्याम केश छितराने लगे,
राधा सी चाह लिये
बादल दूर जाने लगे।

धानी चुनर पहन धरा
मदहोशी में फूली थी,
मेघों के पंखों पर सवार
मौसम ने चाल भूली थी।

शीत का मन भावन मौसम
दस्तक दे धरती पर आया,
धरा ने हो कर के आकुल
बदली थी अपनी काया।

अनवरत दुःख में सुख के छींटे

तीव्र दर्द की वेदना सह कर
'खुशियाँ' जन्म पाती हैं,
बूंद-बूंद बहे पीर जब, तब
सौगाते हर्ष की आती हैं!

धरती की छाती फाड
नन्हा बीज आँख खोलता है,
शनै: शनै: बढता है वो,
उपकारी उसका जीवन होता है।

प्रसव पीड़ा से गुजर कर
शिशु रूदन चेतना जगाता है,
बहने लगता अमृतमय दूध
सीने से ममत्व बरस जाता है।

जीवन है छाया सुख-दुख की
बीतता जाये पल प्रतिपल,
कभी सुखों का हिंडोला
कभी दुखों की छाया सकल।

पानी के बुलबुले-सा जीवन
उस पर और छोटा है तन,
सीमाओं में बंधा हुआ सा
सपना बन छलता है मन।

जन्म और मृत्यु, दर्द के साथ
कैसी है यह संसारी सौगात?
दर्द हो तो समझो, हो जीवित,
बस इतनी सी है सब बात।

कर्मफल

धडकन भी धडकना भूल गई
जीवन ने कुछ यूं चौकाया,
खडा था हतप्रभ समय और
सूरज ताक रहा था वाकया।

देहरी पर हवा की दस्तक
ओटा द्वार खुल गया,
सांय-सांय बहती पवन
मन का सागर सूख गया।

परछांईया अदमकद हुई
फिर धूमिल हो मिट गईं,
रौशनी की आखिरी चमक
भी समंदर में डूब गई।

अचानक बुत कुछ सामने आये
लगा अशरीरी क्रियाकलाप,
पर वो तो जिंदा मानव थे ,
इन्सानियत विहिन दानव थे!

कर्म-फल की परिभाषाये
कैसा संकेत यह देती है?
वो मसली, टूटी कलियां
कौन सा फल भोगती है?

निर्णय

ना थी काली घटा घनघोर
ना थी शूलों भरी राह एकाकी,
ये निर्णय भी तुम्हारा था
और मंजिल भी तुम्हारी।
आज अगर तुम... एकाकी हो,
यह भी है निर्णय तुम्हारा!
जीवन पथ पर फैली थी खुश्बू
कहा था तुम्हें अपना लो,
तुम्हें था गरूर अपने गठन का
अब, शिथिल हो गए पांव
आगे बढ़ने से करें इन्कार!
कहते हो शूल ही शूल है,
मिले फूलों को कुचला बेरहमी से!
ना सोचा ऐसा वक्त भी आयेगा
समय आईना बन आंखे मिलायेगा।
कब तक नजर चुराओगे,
सच को नकार ना पाओगे,
कद्र जीवन की कर ना सके,
अशक्ति पर अपनी, रोते क्यों हो?
अवसर सबको मिलता है
कुछ थामते, कुछ गंवाते
सोचो तुमनें क्या किया है?
गलत मार्ग का चुनाव किया है,
अब तो बहुत दूर आ गये तुम
वापस जा नहीं सकते,
आगे बढो़ और तलाशों
शायद छांव मिल जाये कहीं।।।

शब्दों की बाढ़

कह तो तुम भी सकते थे, पर, कहा नहीं।
शब्द होठों पर थे रोक लिया जबरन,
शाब्दिक दूरी बढ़ती गई।
ना जाने बीच में, शब्दों की
बाढ कहां से आ गई?
भरभरा कर बह निकले सारे अवरोध तोड़ कर।
सभ्यता की सारी दीवारे फलांग कर।
आवाक तुम भी थे, शायद मैं भी।
शब्दों का इतना मलबा हमारे बीच,
अनचाहे मेहमान सा हर समय मौज़ुद था
और हम जानते तक ना थे।
आज बाढ सी आ गई,
बहुत सुकून मिला।
अन्तरमन, बादल सा साफ है।
ना मेरे मन में शब्दों की व्यर्थ कीचड़ है,
ना तुम्हारे मन में।
सब पारदर्शी सा है,
तुमनें कह लिया और मैंनें भी।
अब एक नया रिश्ता बनायें,
ना तुम मौन रहों, ना मैं।
बाढ नहीं, रिश्ते के मध्य
एक मद्धम धारा बहनें दें!

भ्रम

साथ उसके चल रहा था,
कांटे चुन-चुन फेंक रहा था
था उसके हाथों में मेरा हाथ,
जीवन भर का था हमारा साथ
अजब मौसम, गजब नजारा,
धूप-बरसात भरा समां सारा
ठोकर लगी, बदला जीवन,
बिखर गया सपनों का वन
रंगों को मत हो मग्न देखो,
मन के भिन्न गगन देखो
काँटों से वो घबरा गई,
बढ़कर वो हाथ छुड़ा गई
धुंधली सी यादें थी बेकल,
तीखी धूप बिखरी थी सकल
मैं, तन्हा, नये स्वप्न संजोता,
नित कांटों के ऊपर सोता
अजब-गजब उन सपनों का अर्थ,
ना तीन, ना तेरह से बने स्वप्न
'वो' था सच, या 'यह' है सत्य,
या जीवन में भ्रम ही तथ्य?

रिश्ते

तलाशता रहा तमाम उम्र जिसे, वो सुकून ना मिला कहीं,
थी नाते-रिश्तेंदारों की भीड़ लेकिन अपना ना मिला कहीं।
रिश्तो का सार ढूंढनें जब मैं अकेला, घर से निकला,
मजबूरियां बहुतेरी मिलीं मुझे, पर जडें ना मिली कहीं!
सड़क किनारें बैठी बुढिया, अपाहिज बेटे को,
भीख मांग कर लाया खाना, खिलाती दिखी
पूछा, तो रोते हुये बोली, 'छै: बेटे हैं!
अपना-अपना घर बसा रहते है।
इसकी वजह से, मैं फुटपाथ पर रहतीं हूं
इसको रखना नहीं चाहता था कोई ...
डॉ. ने कहा था ज्यादा नहीं जी पायेगा
पर अभागा 19 साल का हो गया है
मरता ही नहीं, जिन्दा कहां फेंक दूं?!
सुन लड़के की आंख से अश्रुधारा बह निकली,
मां की विवशता और अपनी लाचारी
चेहरे को जीर्ण कर गयी, होंठ सी गई।
रिश्ते की परिभाषा, कुछ-कुछ समझ आयी,
पर चाहत से अधिक मजबूरी झलक आयी।
पति-पत्नी का तलाक हुआ, बेटी मां को मिली
कीमत चुकाई मां मिली उसे पर पिता गुम गया।
जीवन की छांव, कुछ घन्टों में सिमट गई,
वक्त बीता, पिता ने फिर शादी की, मां ने भी।

वो तन्हा, बिना रिश्ते के रिश्तों में गुम गई!
न माँ का प्यार मिला, न पिता का लाड मिला
न कभी जिद कर पायी, न गई रूठी-मनाई।
भाई-बहनो के बीच भी सदैव अकेली थी वो
दो लोगो के मध्य दूरियों की पहेली थी वो।
दो घर, दो कमरे; पर कहीं हक़ न जमता था।
कभी दोस्तों में बहलाया खुद को उसने
तो कभी तन्हाई को था अपनाया उसने।
रिश्ते की परिभाषा, कुछ-कुछ समझ आयी,
पर चाहत से अधिक मजबूरी झलक आयी।
रिश्ते तूने जीवन के तानें-बानें बुने और उन्हें उलझा दिया,
सुन्दर-निश्चल होने थे जो भाव, उन्हें मजबूरी जता दिया,
इंसान को दूसरों का और अपना ही मुजरिम बता दिया
रिश्तों की भीड़ के मध्य इन्सान को अकेला बना दिया!

ये भीड़ है

ये भीड़ है; जहाँ हाँको, मुड़े
मुफ्त की चीजों के पीछे
गद्दारों से हाथ मिला ले

ये भीड़ है; ज्यादा नहीं मांगती
आंख के सामने का दिखता रहे
तन सुविधा में पलता रहे

ये भीड़ है; झाडी झंकार
न ठोस मंजिल, न असंभव चाह कोई
आकाश से तारे तोड़ लाये कोई!

ये भीड़ है; कैसे भी जी लेती है
घिसट-घिसट कर पहुंचे मौत के द्वारे
जिया नहीं जिसने, उस मरे को कौन मारे!

वो तेरा दूर जाना

वो धुंध में, तेरा चलते जाना
पीछे मुड़ कर भी ना देखना तेरा।
ठिठक कर रूकना पर पीछे ना पलटना
वो तेरा दूर, बस दूर होते जाना।।

वो तेरी परछाई का छोटा,
बहुत छोटा हो कर धुंधला जाना।
और लकीर बन फिर मिट जाना
वो तेरा जाना, बस चले जाना।।

अहसासों को मिटा,
दिल के रिश्ते को भुला
वो तेरा दूर जाना,
फिर कभी लौट कर ना आना।

राहों में मिल जाएं तो
नजर चुरा कर निकल जाना
आंखों में आई धुंधली परछाईयों को
परे सरका कर बस बढ़ते जाना।

याद है मुझे, तेरा वो चले जाना
दूर, बहुत दूर, होते जाना।।

डर का सत्य

जन्म लेते ही
मृत्यु का डर।
बनने से ज्यादा
टूटने का डर।
सभी जानते हैं
कभी जाना है हमें,
फिर भी, वो सत्य
स्वीकारनें का डर।

गिरने, जलने, कटने;
दुर्घटना से मरने का डर,
अपनों को खोने का डर।
सब है, पर फिर भी डर
जो हासिल है
उसे खो देने का डर,
जो चाहिए
उसे न पाने का डर।

यही है मौत का डर,
जो अनजाने में,
अचेतन में है स्वीकार्य।
परन्तु जीते हुए
सचेतन में रहता है,
इस सत्य को
स्वीकारने का डर।
चिरन्तन सत्य का डर।

राम को किसने समझा?

राम के जीवन को समझ सके
आज के मानव की औकात नहीं!
सुख सुविधा में रहना आया,
आदर्शो को कब अपनाया?
राम क्या थे?

आम जन कभी ये भी ना समझ पाया...
जीवन उनका क्या अपनाता?
उन्हें ही स्वीकार ना कर पाया।
जब तब मूढ़ समाज ने
वोट बैंक की खातिर,
राम-कृष्ण सहित
हिन्दुत्व को छलनी किया
नपुंसक समाज मौन रह
बस ताकता रह गया!

देश के हुनरमंद बच्चे

जाने क्यों मजबूर हो गये बच्चे?
देश से पृथक हो गए बच्चे।
देसी गुलाल को छोड़,
विदेशी रंग में ढल गये बच्चे!

राजनीति ने अपनाया स्वार्थ
वतन मोह त्याग गये परिन्दे,
तलाश खुद की व मुकाम की
नये समाज में बस गये बच्चे!

ना दे सका वतन उनका जब
मान-सम्मान, हुनर को सच्चे;
छिछली राजनीति की भेंट चढ
दायित्वों के तले, बदल गये बच्चे!

जाकर दूसरे देशों में भटकते
खुद को साबित करते अच्छे-अच्छे,
मातृभूमि की सेवा के सपने
मन में दबाये रह गए बच्चे!

देख हालत, हतप्रभ है देश की भूमि
तरक्की, विकास हो गए हक्के-बक्के
हुनरमंद, नौजवानों से अन्याय
अपने घर से बेघर हो गए बच्चे!

नया संसार बसा लें

आओ, मिल कर चले,
नया संसार बसा ले!

पुरानी तारिकों की तरह, यादों को
जीवन के कैलेण्डर से हटा दें।
नया संसार बसा लें!

नयीं राह पर कदमों को कुछ गति दें,
आगे निकल जायें , पुराना भुला दें।
वो बगिया, वो पेड़, वो फूल, वो फल
जो हमारे थे, शहरों में थोड़ा-थोड़ा खरीद लें।
नया संसार बसा लें!

वो कच्चे रास्ते की धूल-मिट्टी भुला दें,
चलो, पक्के कुछ मकान बना लें।
नया संसार बसा लें!

कभी गांव भर में कोई बेगाना ना था
किसी घर में कोई अनजाना न था,
आओ, पक्की सड़को की अट्टालिकाओं मे,
रिश्तों को सिमटा लें, बोन्साई बना लें।
नया संसार बसा लें!

आओ, मिल कर चले,
नया संसार बसा ले!

बोझ मत रखो

भूल जाओ!
जरूरी भी है,
कितना याद रखोगे?
कचरा ना हो जायेगा?
बस पेनड्राइव की तरह
अच्छी बातों को मन में सहेजो,
बाकी समय की रेत से
मिट जाने दो।

वक्त नई-नई
आकृतियां गढ़ता है,
उन्हें देखो, गुनों
मन में उतार लो।
खुशी मिले तो गहरे उकेरो!
नहीं तो मिट जाने दो,
अनेक टीसती नासूर बातें,
जिनसें मन दुखे, क्यो रखें?

भूलो, अब तो आगे बढो़।
साठ-सत्तर साल के सफर में,
कैसा सामान रखना चाहोगे?
सोचो? अपने-आप से पूछो।
जिसमें गुदगुदाती, मुस्काती
यादें, बातें हो वहीँ ना?
फिर तो, बहुत बड़ा हिस्सा,
जिन्दगीं का मिट जायेंगा!
मिटने दो! बोझ मत रखो!

एक अनुभूति

कागज हैरां है
शब्द परेशान है,
ये कैसी हवा
घुली फिजा में?
अर्थ पशोपेश में है!
सोच अपनी,
सवाल अपनें,
कांपते अर्थ,
जबाव शून्य।
लड़ता मानव!
तैरते किनारे
तेज धारे,
भवसागर में
डूबते सारे!

अंतर का दरिया

खामोशीयां शब्द ओढ़ ना सकी
भावनाओं का सागर उफनने लगा,
किस्सा तो, बस तेरा और मेरा था,
देखो, आज कहानियां बनने लगा।

दूर से आवाज देते, थके से शब्द
पास जाऊं तो पाऊं की मौन पसरा है!
पर मैं भी, तेरी तरह, सुन सकता हूं वो राग
जो खामोशी की सीमाओं में बहता है।

सब कुछ बेआवाज, चुप्पी में लिपटा है
अतीत हमारा, धुँधलके में थका बैठा है।
कुछ है कोमल सा जो बस महसूस होता है,
कभी-कभी दिखता है पर नहीं होता है।

एक गूंगा मौन निरपेक्ष सा पसरा है
अंतर के दरिया में, कुछ न बोलेगा;
वो है एक चीखता, विकल कृदन
बस निगाहों से ही इबारतें तौलेगा।

वो व्याकुल मौन, बहती खामोशी की
सुस्त रफ्तार को देख कहानियां गढेगा,
तीव्रता से बहते; बोझिल, बासी, बेढंग
निष्ठुर जज्बातों के विरुद्‌ध शंखनाद करेगा!

वक्त

वक्त के साथ बदल गये
कुछ चेहरे;
पर परछांईया ना बदली।
आज भी किसी मोड़ पर
उन्हें ठहरे देखा है
कहते हुये,
‘ये वक्त ना हमारा हुआ
ना किसी का होगा कभी।
फिसल जाता है हाथों से
जान नहीं पाता कोई।
कभी हमारा भी दौर था
आज हम हाशिये पर है
कल तुम भी यहीं कहीं होगे।
पता नहीं हम चलायमान है
या वक्त
पर तय है मेहमां है सभी।’

प्रकृति के नियम

वो बूढा़ शेर,
था आज असाहय।
इसी जंगल में कभी,
उसका दबदबा था।
एक दहाड़ और जंगल शांत।
पर आज?
बेबस है
प्रकृति के नियमों
में बंधा, बूड़ा शेर।
आगत मौत को स्पष्ट
देख व्यथित है।
उसका इलाका और मादायें
नये जवां शेरों के साथ
जीवन स्वीकार चुके है
और उसे मरने को छोड दिया है।
वक्त-वक्त की बात है
आना और जाना
बीच का सारा फसाना।
कुछ हम करते है
और कुछ प्रकृति करवाती है।
नियति अपना खेल
खेलती रहती है।
प्रकृति के नियम हैं
दिखते नहीं, लागू होते है।

बालपन की पत्री

बिन आवाज मेरा आना
और तुम्हारा चौंक जाना,
दोनों एक साथ हुआ।
क्रिया की प्रतिक्रिया होती है
पर यहां तो क्रिया ही नहीं थी।

लगा कुछ छुपा रहे हो
यादों में गोता खा रहे हो,
हाथ में थी एक डायरी
जिससे गिर पड़े
सूखे गुलाब के झडते पत्ते।

खोई-खोई आँखें, विदीर्ण तन
कौन सी आपदा आ गई?
जवाब नदारद।
'तुम जाओ',
बस इतना भर कह पाए।

गिर गये कुछ कागज पुराने
पीले पृष्ट, धुंधले अक्षर
नाम भी मिट चुके थे
उस पत्र पर से।

सशंकित मन
विस्मित एहसास
मनोभाव छुपाये हुये,
चली आई मैं
छोड़कर तुमको,
तुम्हारे साथ।

पलभर में ही
आ गए तुम बाहर
हंसते हुये, एक पत्री लिए।
‘स्कूल में था, वो मेरे आगे बैठती थी,
पांच दशक पहले की बात है।
अब तो वो भी नानी-दादी होगी।

‘देखो क्या लिखा है,
"*मेरे दोस्त बनोगे?*"
और वो जर्जर कागज
बिखर गया अचानक।
हँस पडे हम दोनों,
बचपन की नादानी पर।

एक अनुरोध

सुनो,
जीवन के इन
पथरीले रास्तों पर गुम,
कोमल भावो को
यूं मन की पर्तो में
ना दफनाओ!
उन्हें बाहर आने दो।
तुम्हारा भावहीन रवैया,
मुझे भयभीत करता है।
इसलिये नहीं कि
तुमसे मुझे कभी
कोई नुकसान पहुंचेगा,
बल्कि, तुम कोमल भावों
को पत्थर बना
जिन्दगीं की बहुत सी
खुशियों से वंचित हो जाओगे ...
समझे?
मेरी खुशी के लिये
तुम्हारा, भावों में जीना जरूरी है।

अनुगूँज

लौट आई कुछ तस्वीरें पुरानी,
आईना भी मुस्कुरानें लगा।
मन के आँगन में फिर,
चंचल सा मुस्कानें लगा।

लौट समय की धारा आई,
पैर पखार थोड़ा हर्षाई।
बुत बनी मेरी आकृति,
स्पन्दन ढूंढें तरूणाई।

अलकों में अनुगूंज अनोखी
जो दिया वो वापस आये,
झोली फैला, भर लूं आँचल
निश्छलता मन को लुभाये।

गूंज उठा आकाश तंज से
बहती हवा भी अकुलाई,
अनुगूँज हालात की
अनायास सबको दी सुनाई।

निराकार ज्योतिपुंज
सबका वास्तविक रूप यही,
टूट कर अपनें आधार से
हमनें पाई सीख नई।

पर्यावरण में सुधार

मन चाहें तरीके से साधनों का उपभोग कर,
पर्यावरण सुधारने की बातें करने वाले,
सफेद वस्त्रों में, काला दिल ले कर चलने वाले!

उनके तन पे छाया रहे, ऐ-सी काम करता रहे
भाड में जाये जनता, कहां का और कैसा पर्यावरण?
नहीं दिखता, हवा-पानी में जहर, बिगड़ता वातावरण!

साल दर साल, लाखों पौधें सरकार लगाती है
बडा़ पैसा खर्च करती है, फोटो-शोटो पेपर में छपते हैं।
अगले साल ये नाटक दोहराएंगे, सोच मन में हँसते हैं।

सालों का हिसाब-किताब कोई नहीं जानता,
पर्यावरण में हुआ कितना सुधर भगवान ही जानते हैं,
इस अभियान में कइयों की जेबे गई सुधर, यह मानते हैं।

सापों की बस्तियां

जब से,
सांपों की बस्तियां
आस्तीनों में बन गई,
नागों नें जहर उगलना छोड़ दिया।
आदमी-आदमी को ढंस रहा है,
सांपों नें ढंसना छोड़ दिया।

इन्सान ने,
अपना लिया है इनकी
आदतों, तौर - तरीकों को
आपस में फुंफकारना सीख लिया।
जुबां से जहर उगलता है मानव
आपस में मरना-मारना सीख लिया।

सोचूं मैं,
कैसा जमाना है?
नाग दूध पी कर
जहर वमन कर रहे है,
और इंसान ड्रग्स-ड्रिंक्स रूपी
जहर पी कर मर रहे है।

मेंहन्दी

शगुन की रात थी
सोलह श्रंगार करके,
पिया का इन्तजार कर रही थी
मेंहन्दी लगे हाथों में
बार-बार नाम उनका देख रही थी।
हुये फेरे, पिया मिलन की रात आई
चुपके-चुपके खिड़की पे
तारों की बारात आई।

समय चलता रहा,
मेंहन्दी रचती रही
अनेक अवसरों पर
बच्चे भी बडे हो गये
और हम थकनें लगे।
कभी मैं सजी थी,
आज सजाया गया है।
सोलह श्रंगार कर,
अर्थी पर लिटाया गया है।

मेहन्दी भरे हाथों में
फिर पिया का नाम है,
पर अब मिलन नहीं
जुदाई की शाम है।

हँसी

हँसनें के लिये निश्चलता चाहिये;
खुल कर हँसी आये, तो कैसे?

बनावटी मुस्कान से व्यापार चलातें हैं;
मन खिलखिलाये, तो कैसे?

अकेलापन बर्दाश्त है, पर रूकना कोई नहीं चाहता।
साथी साथ हैं या पीछे छूट गये, देखना कोई नहीं चाहता।
रास्ता एक रहे, तो कैसे?

समय को बांध कर हाथ में, निकल पडते है, 'मैं' के साथ।
कहां, कौन बिछुड रहा, जानना कोई नहीं चाहता।
इन्सानियत की बात करें, तो कैसे?

आज औपचारिक हो गया है समय,
यहाँ तक की अपनों से भी, वक्त ले कर मिलना पडता है।
खाना नकली, मुस्कान नकली
रिश्तों कों दिल से निभाये, तो कैसे?

हँसी भी इंच दर इंच आती है, रिश्तों के अनुसार लबों पर।
मुट्ठी में बंद रेत सा, सरक रहा, सदैव बदलता अस्तित्व मेरा,
एक झूठ को हँसकर जियें, तो कैसे?

हँसनें के लिये निश्चलता चाहिये;
खुल कर हँसी आये, तो कैसे?

वेदना अंतर्मन की

कितना कुछ छुपा है मन में,
पर्त दर पर्त, ना कहा गया
ना कभी सुना किसी नें।
अन्दर ही अन्दर, उमड़ा शोर।

फट पड़ना चाहता है दिल, खूब चीखूं और चिल्लाऊं!
कुछ पल, खुल कर जी पाऊँ मैं,
अन्दर की वेदना कम हो
तो खुल कर जिन्दा रह पाऊँ मैं।

तडप ये अन्दर की है बेकाबू,
सिसक रहा अन्तरमन...
कैसे जिऊं मन तू बता?
बन शूल चुभे, हर पल तन।

दिल में रिक्तता समाये,
कुछ भी ना मन को भाये।
टूटूं और बिखर जाऊं
नया फिर मैं, एक मन पाऊं।

है अकेलापन बहुत भारी
मन पर वक्त चलाये आरी,
कैसे अब खुद को समझाऊं
पर्तें दर्द की चीर ना पाऊं।

धँसता जाये मन इसमें
गहराई डुबोती जाये,
भयावह अकेलापन मन में
रहे अकेले हम जीवन में!

क्या बताऊँ?

कैसे, किसको, क्या बताऊं?
मन के जख्मों को छुपाऊं।

नाहक तमाशा बनायेंगे ये,
कौन से शब्द मैं अपनाऊं?

वेदना का संसार बसा है,
अन्तरमन दिखला ना पाऊं।

नाहक उलझते संसार में तुम,
मै अपनी राह, खुद बनाऊं।

सोचा तुम दोगे साथ मेरा,
मजाक बनाया, किसे दिखाऊं?

वहां जलती तीलियां मिलेगी,
बारिश है कह खुद को बहकाऊं।

दर्द पुराना हुआ जो, टीसता है,
नासूर बना है घाव, कैसे दिखाऊं?

दिया है धक्का मेरी गैरत ने मुझे,
क्या करूं? उस हद तक गिर ना पाऊं।

आ जाओ, बहुत किया इंतजार;
कठिन है डगर, अब चल ना पाऊं।

आँखें खुली पर बन्द चेतना,
टूटी सांसें कुछ कह ना पाऊं।

अरूणाई की बेला

ओस की बूंदे बिखरी थी,
कोहरा घना छाया था;
इस कंपकंपाती ठंड में
साथ चलता एक साया था।

शब्दों का था अकाल पड़ा
बस स्पर्श की ही बोली थी,
चेतन और अचेतन
दोनों की ही अनुभूति थी।

उज्वल प्रकाश लिए
सूरज सर पर आ गया,
लहरों के थे अधूरे गीत
उनको पूरा वो गा गया।

अरूणाई की बेला आई
उमर भी ढ़लनें लगीं,
शाख से पीली पत्ती भी
अनायास झड़नें लगीं।

उस सुन्दर शाम का
बस गया, दिलों में मौसम,
उम्र तमाम गुजरी
ना मिली फिर वैसी शबनम।

लौटनें की बेला आई अब,
चाहे कोई भी पहले जाये वहां,
चन्द लम्हें का होगा इंतज़ार
फिर एक-दूजे को पा जाये वहां।

किसान

अधूरे, कुछ ख्वाब सजाये,
खेत में, फटे बोरे पर बैठी थी;
हाथ में पुस्तक व पेन्सिल,
मन ही मन कुछ ऐंठी थी।

विधाता का ये कैसा राग?
अन्नदाता कपडो़ को तरसे,
वो पाए कर्ज और गरीबी
दलालों के घर लक्ष्मी बरसे!

कुछ को मिले नए सोपान
कुछ चाहने से भी डरते हैं,
धरतीपुत्र गरीबी में जीते
और कर्ज में डूब के मरते हैं।

विडम्बना नहीं तो क्या?
भारत गांवों का देश,
सिमट रहा महानगरों में,
धर कर नवीन वेश।

ऐसे में कोई, क्यों उगाये?
जिसे सब मिल कर खायें।
उगाने वाला तरसा जाये,
वो हो भूखे, हम कैसे खाएं?

'वो'-जो रह जाता है

सुना है,
वक्त भर देता है
जख्मों के निशान।
पर यह कोई नहीं बताता की
टीस रह जाती है।
वक्त पे, जुबां से, जो नहीं निकलती
वो बात रह जाती है।
समय का क्या?
वो बदल जाता है।
अंधेरों में,
परछांईयों की तस्वीर रह जाती है।

पुकारती आवाजे गूंजती रहती है,
अन्तराल में कैद
अनकहे शब्दों की ध्वनि रह जाती हैं।
बढ़ते कदमों को मोडना असंभव,
राह चुननें की
सहज आजादी खत्म हो जाती है।

चेहरे पर, उम्र के निशानों में छुपी
हैं कई ईबारतें,
बिना कहे ही बयान हर कहानी हो जाती है।

मानव समाज

वो चीथडे-चीथडे हुआ समाज,
पुराने कपड़े बदलने की फिराक में है।
अनुकूल वस्त्र नहीं मिल रहे।
कोई बहुत ढीला है, तो कोई तंग
कोई छोटा है, तो कोई लम्बा।
मानव इतिहास की सारी पर्ते
खोल-खोल कर देख रहा है,
हैरान है कि किसी वक्त में
सुसंस्कृत कहलाता मानव समाज,
हमेशा से घायल, विवादित,
कटा-फटा, नोचा-खसोटा
रक्तिम आन्दोलन का प्रतीक रहा है।
अपने विचरो को दूसरों पर जबरदस्ती
थोपने की प्रतिक्रिया स्वरूप,
युद्ध और अराजकता का
साक्षी रहा है इतिहास!
कपड़ों के रंग-रूप, आकार-प्रकार
बदलते रहे, पर इससे मानव मन के
विकार ना बदल पाये कभी!
संस्कृति घिसटती गई और
अब समाज छिन्न-भिन्न
अस्तित्व लिये, बस जिन्दा है।

तड़प

तड़प होती क्या है?
पूछो, उस मासूम बच्चे से,
जिसे रोटी के लिये पीटा गया,
कपड़ो के नाम पर जिसे
चीथडे पहनाये गये,
नौकरों से भी ज्यादा
उससे काम लिया गया,
और बेरहम सौतेली मां,
दूसरे बन चुके पिता ने
निर्ममता से उससे,
उसका बचपन छीन लिया।

तड़प होती क्या है?
पूछे वे अपने आप से,
मेरी जिन्दगी ऐसी क्यों?
गैरों से दया मिले पर
अपने निष्ठुर बने,
यातनाओं भरा, बेरहम जीवन दिया,
जीवन सजा लगने लगा।
मन पूछे, क्यूं आया मैं,
सजा भोगने दुनिया में?
है जवाब किसी के पास
मेरी इस तड़प का, कारण क्या?

अप्रत्याशित आश्रय

हल्की-हल्की आवाज
शिशु रूदन की,
तीव्र-सी आवाज
बाहर तेज बारिश की।
मन का भ्रम समझ
पलट आया था मैं।

पर फिर आई वो आवाज!
घर के पास के पार्क से,
नन्हा,अबोध,असहाय शिशु,
बमुश्किल चंद घन्टे का!
पुलिस आई, पूछ ताछ हुई
पर कुछ पता ना चला !

मुझे ही डांट-डपट, वो
औपचारिकता निभा चले गये।
वो मासूम-सी, नन्हीं कली
मेरी बांहों में पड़ी रही।
जाने कौन सा दर्द मरोडने लगा,
हृदय को छलनी करने लगा।

मैंने कर लिया निश्चय,
उसे मैं ही पालूंगा।
बेटी है वो मेरी और
पिता हूँ मैं उसका।
उसे सारी खुशियां दूंगा।
करूँगा रक्षा उसकी
इस निष्ठुर समाज से,
जिसने जन्मते ही उसे
मौत थमानी चाही!

एक-दूजे को ढूंढेगे

शून्य अंतरिक्ष में
खोने से पहले, जान लो, क्या है
ये क्षणिक जीवन?
नहीं पता, अब
कब मिलेगें?
यहां से चले जाने के बाद,
कौन, किस रूप में होगा?
क्या वहां स्वरूप होगा?
मिलेंगे या नहीं
पता नहीं।
तू मुझको, मैं तुझको
फिर ढूढेंगे।
अन्नत, अंधेरी गहराईयों में,
शायद रौशनी के साथ हमें फिर,
प्यार का नया
रौशन जहां मिले।।।
मन की गहराईयां तक अनदेखी,
अंतरिक्ष कहाँ से पहचाना है?
वादा ना करो की मिलेगें हम,
पर एक-दूजे को
ढूढेंगे जरूर।

कैसे प्रीत निभाए हम?

हे मीत, ये कैसी प्रीत?
तेरा दर्द तेरा है, मेरा दर्द मेरा है!
सामांतर राहों के राही,
कैसे प्रीत निभाये हम?

बीत गये सब बहाने
रीत गये स्वप्न सुहाने,
मीलों का है फासला
कैसे प्रीत निभाये हम?

थी किस्मत यही लिखी
राहों पर अड़ी रही,
भाग्य का कर विरोध
कैसे प्रीत निभाये हम?

कमजोरी हममें भी है
मन तभी दुख सहता है,
विशाल, अनन्त, गगन जब
कुछ मुट्ठीयों में रहता है
कैसे प्रीत निभायें हम?

कितने पीछे छूटी राहें
जो हमें मिलातीं थी,
अब तो दिलों के मध्य ही,
देखो विस्तारित कुछ रेखा हैं
कैसे प्रीत निभाये हम?

उस कोमल भाव के अन्दर
अभी भी कुछ पलता है,
जब इतना भी न समझे
कैसे प्रीत निभायें हम?

गांव और शहर

ढूंढू कहां-कहाँ तुझे?
ऐ शहर! अपना पता बता!
बड़ी, लम्बी-चौड़ी, काली सडकों,
पर है रहा है तुझे गरूर सदा।

जिस्म की ऊपरी चकाचौंध लिये
भीतर के सन्नाटे से लडता है;
पास किसके कितना
इसी फिक्र में जीता-मरता है!

ओ शहर, तू दूरी बढाता है,
खून और खून के मध्य।
गांव और तुझमें पैदा हो रहा,
अचल, वैचारिक मत-भेद।

शहर तुझे, पडोस में कौन,
यह तक तो नहीं पता।
पर गांव है, पूरा एक घर
सब में रहती एकता।

कैसें रहूं शहर जाकर
विचारे गांव की बाला,
अट्टालिकाओं की चमक
डाले मन में गहन अंधियारा!

अतीत के खत

देखो ना,
स्याही मिट गई, कागज गल गया
पर उसमे समाई खुशबू
आज भी ताज़ा है!
लिखा था तूने जो खत
अल्हड उमर में,
अब खुलते ही
हर किस्सा दुहराता है।
उसी मोड पर खींच ले जाता है,
यौवन दस्तक दे रहा था जब;
मन-मयूर वश में ना था तब।
तुमने हौले से पंखों को सहलाया
उडने का जतन करवाया।
झांकने लगा चाँद बदली से,
सारी दुनिया के विरुद्ध
हम एक हो गए।
उमर बीतती गई,
रुह घुलती गई एक दूजे में
और हम चलते-चलते
यहाँ तक आ गए।
अब सारी जिम्मेदारीयों को निभा,
हम फुर्सत में है।
आओ, फिर पुराने खत पढ़ते है
एक बार पुनः जवानी को जी लेते है।

आधुनिक समाज

क्यों छलती है बातें तुम्हारी?
क्यों ये महसूस होता है कि
नहीं करते तुम, मेरी तरह
हर जिम्मेदारी को स्वीकार।
मेरे ही हिस्से क्यों आता है
हमेशा ये सारा कारोबार।
तुम हमेशा बच जाते हो पर
मुझे निभाना ही पड़ता है।
सब यथावत, वैसे का वैसा
मेरे लिये कुछ नहीं बदला।
तुम्हारा जीवन अलग है,
सिंचित ह्रदय से फर्ज निभाया
मान फिर भी तुम्हें मिला,
मेरे लिये तो ये जिम्मेदारी थी
जिसे मैंनें निष्ठा से वहन किया।
चुभन होती है, सब कुछ चुभता है
सारे अच्छे बदलाव तुम्हारे
और फर्ज आये हिस्से हमारे!
वाह रे, आधुनिक समाज
अनोखे हैं अंदाज़ तुम्हारे!

आंखें

तेरी आंखों में खो कर
सुध-बुध अपनी भुला बैठा,
पी के जाम नशे के
मैं अपना होश गवां बैठा।

कहते हो कि भूल जाओ
पास मेरे तुम मत आओ,
मजबूरी समझो मेरी तुम
अपना प्यार निभा जाओ।

कितने थपेड़े किस्मत ने मारे
'बेवफा' ना कहो तुम तो,
भरोसा रखो प्यार पर मेरे
भाव मेरे, प्रिये तुम समझो।

प्यार, मिलन का नाम नहीं
रूह से रूह का रिश्ता है,
झांको मेरी आंखों में
दिल में एक फरिश्ता है।

आंखें सब कुछ बोलती है
राज दिलों के खोलतीं हैं,
साजन मेरी आंखों में झांको
तेरे प्यार में डोलती हैं।

आंखों में तो सिर्फ तुम बसे हो
कैसे खुद को समझाऊं?
साजन मैं तेरे प्यार में
जान अपनी लुटा जाऊं!

शब्दार्थ

शब्दो की ताकत को समझो,
अर्थ बेमतलब शोर मचाते हैं।
एक ही प्रश्न के, लोग स्वार्थवश
बहुत से मतलब निकालते हैं।
अर्थ बदलते-बदलते अंततः
शब्द अर्थहीन हो जाते हैं।
प्रश्न बेबाक खडे, राह में
आगंतुक उत्तर की प्रतीक्षा में,
कई सदिया गुजार देते हैं
और मिलता नहीं परिणाम कभी।
युगों के परिवर्तित हो जानें पर
यक्ष प्रश्न मजबूत चट्टान के रूप में,
वहीं खडे हैं, जहां से चले थे कभी
एक नवजात शब्द के रूप में।

आकांक्षा का बुलबुला

बहते-बहते
जब वहां तक पहुंची,
तो देखा ये तो केवल
बुलबुला था!

ना पकड़ सकते,
ना छू सकते,
ना उसमें जी सकते,
बस नैनों से दिखता था।

पीछे पलट कर जब देखा
मेरे सपनों का संसार;
कुछ बेरंग, कुछ रंगीन
कुछ सुभग, कुछ उजाड!

आगे बढ़ देखा तो
आकांक्षा का वो बुलबुला,
एक बार फिर
बड़ी दूर नजर आया!

पर अब मैं, वो नहीं रही
अब में, समय के दरिया में
कूद कर बस बहती जाऊं
निरंतर बढ़ती जाऊं।

अब बचे पलों को
शिद्दत से जिऊंगी,
सपनों को पूरा करूंगी
बुलबुले के पीछे नहीं पड़ूँगी।

हम पर्यटक

कुछ है जो मन में ढ़ल रहा है
अन्दर ही अन्दर पिघल रहा है,
मन को उकसाता अकसर है
पर राह नहीं ढूंढ पाता है!

विवश है अनीती से
हारा है कुरीती से,
बड़ा अजब संयोग रहा
परवश मन का वियोग रहा!

अजीब समझौता जीवन का है
तन अपना और मन पराया,
संयोग-वियोग, सुख-दुःख
जग में रची-बसी है माया!

मत तुम कोई आक्रोश जताओ
नियति की चाल, समझ भी जाओ,
ना मिलेगा विचलन से कुछ यहाँ
जो लिखा बस वही पाओ!

पत्थर की है लकीर यहां
चलते रहने से बने निशां,

क्या, कुछ ना तुझ पर बीती
विस्मृत यादें उधड़े सिवन!

दर्द की नदिया लबालब
सुनामी सी बहती है,
पदचिन्ह कितने हल्के है
किस्मत के सब लेखे है!

क्या अफसोस तुझे होता?
क्यों मन किंचिंत भरमाता?
बीती और आगत सारा,
नदिया की बहती धारा!

संयोंग से हम यहां है
ये समय की ठहरी चाल है,
अपनी यात्रा के एक पड़ाव पर
चिरन्तन यात्री हैं, हम पर्यटक!

राम नाम की महिमा

पुत्र बन कर जन्म लिया
धरा पर खुद भगवान नें,
आये थे सिखानें धर्मज्ञान
और मर्यादापूर्ण जीवनज्ञान।
पिता की आ़ज्ञा सर्वोपरि
ये विधान बतलाया है,
राजतंत्र निभाने को
पत्नी त्याग तक, कर दिखाया है।
मर्यादा पुरषोत्तम तब
खुद को कहलवाया है।
राम नाम की महिमा
जन-जन जान ले तो,
समाज में बुराईयों का
सर्वनाश हो जायेगा।
सतयुग चाहे ना आये
पर जीना आसान हो जायेगा।
राम नाम में बसता
एक सूक्ष्म संसार,
हो सके तो आजमा लो
ये है पावन द्वार।

थामा हुआ वक्त

कस के थामा था मैंने
कुछ लम्हों का ताना-बाना,
हुआ मुक्त जिम्मेदारीयों से
अब पाये फुर्सत के पल।
खोली मुट्‌ठी, उन खास लम्हों की;
थी रिक्त ना था कुछ शेष!
कैसे बह गया वो खजाना,
पकडा था जिसे कस के मैंने?
हतप्रभ मैं ताक रहा था
अदृश्य धागे की डोर,
बोला वक्त स्वयं आकर,
'क्यों रहूँगा कैद मैं?'
जीलो उसी क्षण, जब मिले
खुशनुमा पल, सुखद प्रसंग।
रेत की मानिंद बह जाता है
समय लौट के नहीं आता है,
बहती जल की धार है ये
बाँध सका है कौन इसे?

आज का रचनाकार

रचनाकार को बांधों ना
तुम किसी परिधी में,
स्वछन्द उड़ने दो उसे
उन्मुक्त ऊंचाईयों में !
ये उस शेर के जैसा है
एक बार जो बंध गया,
स्वतंत्रता का आकर्षण भी
इसे लुभा ना पायेगा।

उसके कलम की धार
कुंद हो कर रह जायेगी।
उसे स्वतंत्र उड़ने दो।
अपने शाब्दिक परिदृश्य में
रंग स्वयं ही भरने दो।
आईना तभी वो बन पायेगा
इतिहास तभी वो रच पायेगा।
दायित्व उसे समझने दो

खुद पथ तय करने दो
स्वयं रच साहित्य अपना
यशोगान तुम ले लेना,
बनो प्रशंसा के पात्र

अवलोकन स्वयं का करने दो !
अपनी सीमाओ में बंधा
अपना बो़या काट रहा,
अपने लक्ष्ति उद्देश्यों को
स्वयं उसे तौलने दो !

राह चुन वो चलेगा
जो रचे वो रचने दो,
आत्माभिमान पाये
या धिक्कारे स्वयं को
पथ सुनिश्चत उसे ही करने दो!
इतिहास लिखे ही जाते है
सबक सीखने के लिये
आज अपना स्व उसे
खुद तलाशने दो !

खून के आसूं रोता है
तब संसार नया रच पाता है,
उसे उसकी धार के साथ
नया सवेरा बुनने दो!

ठंड़ सुहानी

आसमां से उतरता कोहरा।।।
छुप कर बैठी है, घूप भी ठुठुरते हुये
दिन में भी रात का आना
बेहाल है सभी, ठंड़ से यहां!

दांत आपस में बजते हैं
शब्द मुंह में अटकते हैं
धुआं मुंह से निकलता है
तन भी ठंडा़ रहता है!

गर्म कपडों से भी
सर्दी नहीं मिट पाती है !
मौसम की आंख मिचौली
और ठिठुरा जाती है।

बैरन बारिश इसमें
आग लगा मुस्काती है !
सब ओर शीत का बसेरा
बस आग ही मन को भाती है !

धुधंलाता दिन

कोहरे की चादर ओढ कर
आलस्य में, बिस्तर पर पड़ी है सुबह!
इतनी जल्दी क्या है?
सूरज को आसमान पे आने दो,
धुंध छट, धूप को आने दो!
रश्मियां खिल जायेंगी,
जमी हुई ओस पिघल कर
खुश्बुओं में मिल जायेगी।
महकती पवन मन को
गहरे तक गुदगुदायेगी।
दोपहर में हल्की धूप और
धुंध का सेहरा सजा़ये,
सूरज लुकाछुपी खेलता
मन को भीतर तक छू जाये।
इस प्यार भरे आलम में
पिया तू बहुत याद आये!
ठिठुरती शाम और रातें
इन्तजार में बेसब्र धुंधलाता दिन!
गर्म चीजों से याराना,
कुहासे की चादर बिछा
खामोश धुंधलाता दिन!
मन के अनछुयें अहसासों को
छूता पास से बस, गुजर जाता है!
ठिठका, ठहरा धुंधलाता दिन!

मेरी मुझसे मुलाकात

मिलने निकला था मैं तुमसे
वो यात्रा बहुत भारी थी,
नजरों के सामने ऊजड़ी
अपनी फुलवारी थी।

टूट गये आस के महल
वो धागा भी टूट गया,
बांधा था जिसने हमें
वो रिश्ता ही छूट गया।

जार-जार रोता था दिल
मानो, नितांत असहाय हो,
रिक्तता का बोझ लिए
बढ़ पाना दुःसहाय हो।

जब खुद को,अपने ही सामने
अजनबी सा मैंने पाया था,
अपना परिचय आप करवाया
मन को सशंकित पाया था।

धीरे-धीरे दोस्ती कर
खुद, अपना बन बैठा मैं,

इस मुलाकात का ये परिणाम
स्वयं को समझने लगा था मैं।

रेत की जमीन पर खडे हो
दिवास्वप्न संजोये थे,
आज स्वयं से मिल कर जाना
नहीं लक्ष्य वो मेरे थे।

आज अपना अस्तित्व जान
परिचय एक मैं देता हूँ,
निकल आया अंधेरी सुरंग से
मैं जुगनू जीवन का हूँ!

हुआ जो,अफसोस नहीं
मैं अपना साथी हूँ आज,
अहोभाग मेरे, ऐ मित्र
हुई मुझसे मेरी मुलाकात!

नाम - नमिता दुबे

जन्म - २४ नवम्बर १९७०, आगरा

शिक्षा - एम.ए. समाजशास्त्र

पता - नमिता दुबे, फ्लैट नं. 1203A,13 floor ,Tower G2,Golf City plot no. 11, Sector 75, Noida. Up 201305

ईमेल - namitaavnishdubey@yahoo.com

मो.- 9700850016

प्रकाशन - ओस के आँसू (काव्य संग्रह)

सम्मान- अंतरा शब्दशक्ति सम्मान २०१९

हिन्द व हिन्दी का सम्मान, है प्रमाण देशभक्ति का.. आइए करें सृजन, शब्द से शक्ति का...

15, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जिला- बालाघाट (म.प्र.), पिन 481331, मो.- 9424765259, ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति

अन्तरा शब्दशक्ति के लिंक्स

Website:- www.antrashabdshakti.com

Facebook page:- https://www.facebook.com/antrashabdshakti/

Fecbook group:- https://www.facebook.com/groups/antraashabdshakti/

978-93-5372-249-4

मूल्य 250/-